हुनर

मनोज कुमार

जहाँ मेरे पापा दुकान लगाते हैं, वहाँ एक चाय वाला भी दुकान लगाता है। उसकी भी दुकान पर काफ़ी भीड़ होती है, जिसके कारण वहाँ काफ़ी शोर भी मचता है। मैं कभी–कभी अपने पापाजी की दुकान पर बैठ जाता हूँ, तो यह सब देखता हूँ। कभी–कभी तो वो चाय वाले मुझे उस दुकान पर बिठा कर कप–गिलास लेने चले जाते हैं। वहाँ जब कोई ग्राहक आता है, तो मैं उसके लिए चाय बना देता हूँ। लेकिन कोई ग्राहक कहता है, "भाई छोटू कहाँ गए हैं? मुझे उनके हाथ की चाय अपने घर जैसी लगती है"। कोई–कोई तो मेरे पापाजी की दुकान पर से अख़बार उठाकर वैसे ही बैठ जाता है और अख़बार पढ़ने लगता है। कभी–कभी तो मैं छोटू भाई से पूछता हूँ, "भाई, मुझे भी अपनी जैसी चाय बनाना सिखा दोगे?" वो कहते हैं, "हर कोई कारीगर अपने हाथ का हुनर किसी और को नहीं देता"। मैं ये बात सुनकर बैठ जाता हूँ, क्योंकि उनकी ये बात मुझे अच्छी लगती है।

प्रेशर कुकर

नीलोफ़र

मेरी छोटी ख़ाला एक हफ़्ते के लिए हमारे यहाँ रहने आई हुईं थीं। ख़ाला की शादी हो चुकी है, पर कोई बच्चा नहीं है। ख़ाला का रंग गोरा, आँखें सही, नाक मीडियम, होंठ मोटे हैं, और वो देखने में थोड़ी मोटी हैं। ख़ाला बहुत ख़ुशमिज़ाज हैं। उन्हें काम करने का बहुत शौक़ है। इसलिए वो हमारे घर में रोटी या सब्ज़ी बना लेती हैं।

बुधवार का दिन था। दोपहर के बारह बज रहे थे। ख़ाला उस वक़्त चावल और दाल धो रही थीं। अम्मी को थोड़ा बुख़ार था, इसलिए वो लेटी हुईं थीं। पापा, मैं, शाज़िया और रिहान टीवी देख रहे थे और बड़े भाई काम पर गए हुए थे। ख़ाला ने बाहर स्टोव जलाया और चावल चढ़ाने के लिए मुझसे भगोना माँगने लगीं। वैसे हम चावल कुकर में पकाते हैं। पर कुकर का ढक्कन ख़राब था, इसलिए तब भगोने में पका रहे थे। मेरी आँखें टीवी पर थीं। इसलिए भूल से मैंने ख़ाला को थोड़ा छोटा वाला भगोना दे दिया।

जब चावल पकने लगे और भूख बढ़ने लगी, तो चावल फूलकर भगोने के सिरे तक आ गए और थोड़े कच्चे भी रह गए। ख़ाला कहने लगीं, "बेटा, भगोना छोटा रह गया"। तो पापा की, मेरी और अम्मी की नज़र भगोने पर गई। मुझे अपने–आप से ग़लती–सी महसूस हुई कि मैंने छोटा भगोना दिया, इस वजह से चावल ठीक से नहीं पक पाए। ख़ाला और अम्मी ने तो कुछ नहीं कहा, पर पापा का मुँह कौन रोक सकता है? पापा आँखें फाडकर, भँवें उचकाकर, दाँत पीसते हुए बोले, "बड़ा भगोना क्यों नहीं दिया?" मैंने कहा, "मैंने देखा नहीं"। तो वो कहने लगे, "वैसे तो बहुत बातें पता हैं, पर यह नहीं पता कि चावल कौन से भगोने में पकते हैं!"

पापा की बड़–बड़ चालू रही, पर मेरा ध्यान इस बात पर अटक गया कि पापा ने मेरे अंदर क्या देखा जो कहा, "वैसे बहुत बातें पता हैं"। मैं अपने–आप ख़ुद में उलझ गई। पापा ने मेरे अंदर क्या देखा? मैं अपने आप से सवाल करने लगी, पर जवाब ने अपना चेहरा नहीं दिखाया। मुझे ऐसा लगने लगा कि पापा की इस बात ने मुझे क़ैद कर लिया हो और मुझे इससे मुक्ति चाहिए। अब जब भी मैं पापा का चेहरा देखती, मुझे वो बात याद आती। फिर मैं अपने आप से उधेड़–बुन करने लगती। कभी बीते दिनों से कुछ बुनती, तो कभी पल–भर में आज के दिनों से उसे उधेड़ देती। पर मैं इस बात से मुक्त नहीं हो पाई। एक रात तो मुझे नींद भी नहीं आई। यही बात मेरे दिमाग़ पर छाई रही। अभी तक मैं इस बात से मुक्त नहीं हो पाई।

अगर पापा मुझे वो बात बता दें, जिसे देखकर पापा ने कहा, "वैसे तो बहुत बातें पता हैं", तो शायद वो मेरे लिए शब्दों के रूप में दिल को तसल्ली देने वाला एक उपहार होगा, जो मुझे मेरी परेशानी में से निकलने में मदद करेगा। मैं चाहती तो ये तोहफ़ा पापा से उसी वक़्त ले सकती थी, जब पापा ने मुझ से वो बात कही थी। पर उस वक़्त ये हाज़िर–जवाबी होती। मैं न तो उस वक़्त पूछ पाई, और न अब पूछ पा रही हूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि पापा से कैसे कहूँ, "तुम ने मेरे अंदर क्या देखा जो कहा वैसे बहुत बातें जानती है?"

मैं नहीं जानती कि मेरे घरवालों ने इस बात को कितनी लाइट्ली लिया होगा, क्योंकि इस टॉपिक पर मैंने दोबारा बात नहीं की। इस बात का ज़िक्र किसी से नहीं कर पाई – न घर वालों से, न दोस्तों से। अगर मैं इस बात को साँझा बनाऊँगी तो

अलग–अलग लोग मेरी अलग–अलग बातें निकालेंगे। जैसे, पापा ने तुझे नाचते हुए देखा होगा, या सहेली से बात करते हुए सुना होगा, क्योंकि फ़्रैंडशिप में तो कोई भी, कुछ भी मज़ाक में कह सकता है, आदि। मैं जानती हूँ मुझे इस बात से मुक्ति नहीं मिल सकती, क्योंकि पापा का चेहरा देखकर वो शब्द कानों में गूँजने लगते हैं। हाँ, वैसे वक़्त की परछाइयाँ इसे थोड़ा हल्का कर सकती हैं, पर मिटा नहीं सकतीं।

माधुरी दीक्षित

लख्मी चन्द कोहली

ये कहानी एक ऐसे टीचर की है जिसका नाम ए के रिज़वी था। उसने अपनी पढ़ाई अलीगढ़ यूनिवर्सिटी से की थी। वो इंग्लिश का टीचर था।

जैसा कि मैंने आपको बताया, हमारा एक टीचर था। एक टीचर, जो हमेशा अपने स्टूडेन्ट्स से हँसी–मज़ाक करता था, और कभी–कभी तो गाली देकर भी बात करता था। वो हमेशा पान खाकर रहता था। उस की अपनी एक गाड़ी थी, और वो थी लूना, जिस पर वो आता–जाता था। वो कभी भी बिना बुलाए क्लास में नहीं आता था।

एक बार की बात है। हमारे प्री–बोर्ड के पेपर चल रहे थे। प्री–बोर्ड मतलब वो इम्तिहान जिन में हम सिर्फ़ गाने या फिर जोक लिखा करते हैं। हाँ, तो पेपर था साइंस का, और हम पेपर कर रहे थे। रिज़वी सर हमारा पेपर लेने आए हुए थे। (अगर आप रिज़वी सर की पहचान जानना चाहें, तो बहुत आसान है। वो दिखने में थोड़े मोटे थे, और उनकी लंबाई लगभग छः फुट होगी। वो दूर से एकदम फ़ौजी लगते थे। उनके बालों की कटिंग भी फ़ौजियों के जैसी थी। और वो हमेशा ही कोट पहन कर आते थे, वो भी नीले कलर का। हर वक़्त वो पान खाते रहते थे। न जाने क्यों, पूरे स्कूल में वो ही एक थे जो पान खाते थे, इसलिए उन्हें पहचानना काफ़ी आसान था।) उनको अपनी क्लास में आता देख सारे लड़के ख़ुश हो गए। वो इसलिए, कि सर नक़ल चलाने देते थे। मगर उस दिन वो कुछ ग़ुस्से में लग रहे थे। वो कुछ ज़्यादा नहीं बोल रहे थे।

हमारा पेपर शुरु हो चुका था। कुछ लड़के पेपर लेकर ऐसे बैठे थे जैसे मानो अभी

उसका जहाज़ बनाएँगे और फूँक मार कर उड़ा देंगे। कुछ लड़के पेपर पर 'जय माता दी' लिख रहे थे। और कुछ क्वेस्चन पेपर को ऐसे पढ़ रहे थे जैसे वे कोई अख़बार पढ़ रहे हों। सभी को इंतज़ार था। इंतज़ार था सर के ये कहने का कि "शोर मत मचाओ, जो करना है चुपचाप कर लो"। तभी मेरे पीछे वाले लड़के ने एक फर्रा निकाला और पेपर करने लगा। (वो दिखने में बिलकुल बच्चा लगता था। उसकी लंबाई लगभग चार–साढ़े चार फुट होगी। उसकी आवाज़ भी एकदम बच्चे के जैसी थी। वो दसवीं में कैसे पहुँच गया, ये तो भगवान ही जानता है। उसका नाम था राजकुमार। मगर हम उसे राज कहते थे।)

इतने में मैंने कहा, "अबे ओए! पागल हो रहा है? देख नहीं रहा सर गुस्से में हैं? बेटा, अगर उन्होंने देख लिया तो सीन हो जाएगा"।
तो राजः देखी जाएगी। तू आगे देख यार, मुझे करने दे।
मैंने कहाः कर ले भाई, लेकिन मुझे भी दियो! नहीं तो फिर देख ले!
तो राजः अभी मना कर रहा था। चल देख लियो।

फिर वो आराम से नक़ल से अपना पेपर करता रहा। मगर न जाने सर को कैसे पता चल गया कि राज नक़ल चला रहा है। सर अपनी सीट से उठे और सीधा राज के पास पहुँचे।
और सरः अबे बैंगन! नक़ल चला रहा है? दिखा कहाँ है फर्रा। दे इधर, वरना तेरा पेपर छीन लूँगा। दे इधर! अबे दे! कहाँ है?
राजः सर, मेरे पास नहीं है। मैं तो चुपचाप पेपर कर रहा हूँ।
सरः बेटा, तू चुपचाप कर रहा है इसलिए तो मुझे शक़ है। अब चुपचाप वो फर्रा इधर दे दे, वरना तू जानता है मैं कैसा इंसान हूँ।
राजः सर मैं जानता हूँ आप बहुत अच्छे इंसान हैं। आप कभी किसी का पेपर नहीं छीनते।
सरः अच्छा बेटा, फूँक पे चढ़ा रहा है! दे इधर, कहाँ है?
फिर सर ने उसकी पूरी तलाशी ली, मगर उस पर कुछ नहीं मिला। मैं भी हैरान था, कि उसने फर्रा छुपाया कहाँ होगा।
सरः चल बेटा, अभी तो कुछ नहीं निकला। मगर मैंने तुझे नक़ल करते देख लिया तो बेटा तेरी ख़ैर नहीं।

राजः ठीक है सर।
फर्रा सर को क्यों नहीं मिला, वो मैं आपको बताता हूँ। राज की एक ख़ासियत थी। पहले तो वो कई–कई दिनों तक नहाता नहीं था, और अपनी जुराबों को महीनों तक बदलता नहीं था। अगर वो अपने जूते क्लास में उतार दे, तो पूरे स्कूल में बदबू हो जाती थी। ये बात हमारे लगभग सभी टीचर जानते थे। और इसी का वो फ़ायदा उठाता था। वो फर्रा या तो खा जाता था, या फिर जूतों में छुपाता था।

जब सर उसकी तलाशी ले रहे थे तो उन्होंने उसकी हर जगह की तलाशी ली, मगर जूते नहीं उतरवाए। तलाशी के दौरान –
राजः सर, जूते उतारूँ क्या? देख लो कहीं इनमें तो नहीं हों।
सरः रहने दे मनहूस! अगर तुझे नक़ल करनी है तो कर ले, मगर जूते मत उतारियो, वरना मैं तुझे जान से मार दूँगा।
सब लड़के ज़ोर से हँसने लगे और सर भी हँसने लगे। तभी –
एक लड़के ने पूछाः सर, देखना ये क्या क्वेस्चन है।
सरः बता क्या है।
लड़काः तीन फट्टों को एक बराबर रखकर उनके पीछे मोमबत्ती जलाई जाए और मोमबत्ती की लौ के सामने फट्टों में छेद किया जाए, तो पहले फट्टे के गड्ढे में से क्या नज़र आएगा? मोमबत्ती की लौ, या मोमबत्ती?
तो सरः तुम सब बताओ क्या नज़र आना चाहिए।
तो आधे लड़कों ने कहा, "मोमबत्ती" और आधों ने कहा, "लौ"।
तो सरः नहीं! तुम सभी ग़लत कह रहे हो। मैं बताता हूँ। लिखो।
तो सर ने अपनी फ़ेवरिट हीरोइन का नाम लिया। उन्होंने कहा, "उसमें माधुरी दीक्षित नज़र आएगी"। इतना सुन कर सभी लड़के ज़ोर–ज़ोर से हँसने लगे। और सभी का तो मुझे मालूम नहीं, मगर राज ने तो लिख भी दिया था।

जनरेटर

धिरेन्द्र प्रताप सिंह

यह बात उस समय की है जब क्रिकेट वर्ल्ड कप चल रहा था। दिन और तारीख़ तो मुझे याद नहीं, पर यह ज़रूर याद है कि वो मैच भारत और पाकिस्तान के बीच एक

लीग मैच था। उस समय मैं अपनी दुकान संभालता था। मैच तीन बजने में दस मिनट पर शुरु होना था। सभी मार्किट के लोग उत्साहित–से थे। देखते–देखते मैच शुरु हुआ। मैंने अपने काम को वहीं ख़त्म किया और अपने कारीगरों से कहा, "कोई आए तो मुझे आवाज़ लगा लेना"। उसके बाद मैं ऊपर घर में आ गया और मैच देखने लगा।

भारत ने टॉस जीता और पहले बल्लेबाज़ी की। भारत ने पाकिस्तान टीम के सामने 227 रनों का लक्ष्य रखा। भारत की बैटिंग ख़त्म हो चुकी थी। मैच आधे घण्टे बाद शुरु होना था। मैंने सोचा तब तक दुकान में चलकर बैठता हूँ। मैं नीचे उतर आया। मैं जैसे ही नीचे आकर बैठा तो अचानक लाइट चली गई। उस टाइम राजू के पापा ने भी अपना टीवी दुकान में ही रखा हुआ था। सब कह रहे थे कि आ जाएगी। मैं मन में सोच रहा था कि लाइट अगर नहीं आई तो मैं जनरेटर लगा कर ही मैच देख लूँगा। इतने में राजू के पापा आए और कहने लगे, "चिन्टू, तुम अपना जनरेटर दुकान से निकालकर बाहर मेरी दुकान में रख दो। हम सब मिलकर ही मैच देखेंगे"। मैंने कहा, "अंकल, मेरा जनरेटर पेट्रोल का है और उसकी टंकी सूखी पड़ी है"। उन्होंने कहा, "कोई बात नहीं, सब पैसे मिलाकर पेट्रोल मँगवा लेते हैं"। तीन–चार लोग और भी थे। सब ने पैसे मिलाकर मुझे दे दिए।

मैच शुरु होने में दस मिनट बाक़ी थे। पूरे इलाक़े की लाइट गोल थी। राजू के पापा ने कहा, "अब जाओ और पेट्रोल ले आओ"। मैंने पैसे लेने के बाद कहा, "कोई कैन या बोतल है, तो दे दो"। उन्होंने कहा, "अंधेरे में कुछ नहीं मिलेगा। सब इधर–उधर हो रखा है"। मेरी नज़र दुकान में रखी पानी की बोतल पर पड़ी। मैंने उसे खाली किया। मोटरसाइकिल पर किक मारी और जाते–जाते अपने मिस्त्री से कहा, "जनरेटर बाहर रख देना"। मैं काफ़ी उत्साहित–सा होने लगा। मैं गाड़ी रफ़्तार से चला रहा था। मैंने जल्दी से पेट्रोल लिया और आ गया। इतने में मेरे मिस्त्री ने जनरेटर बाहर निकाल दिया था। सब लोग मेरा ऐसे इन्तज़ार कर रहे थे, जैसे बाराती दुल्हे का। मैंने बाइक खड़ी की और जनरेटर उठवा कर राजू की दुकान के कोने पर रखवा दिया। उसमें मैंने तेल डाला सिर्फ़ एक लीटर, और बाक़ी बचाकर दुकान में रख दिया। उसके बाद राजू के पापा ने जनरेटर की डोरी खींची और जनरेटर स्टार्ट हो गया। सब लोग हल्ला मचाने लगे। मैंने टीवी को जनरेटर से लगाया। लाइट अभी भी नहीं आई थी। राजू की दुकान में भीड़ लग गई थी। उसके बाद मैं बैठ गया और मैच देखने लगा। पाकिस्तान

के दो विकेट हो चुके थे, और रन थे छः ओवर पर तीस। इतने में सब ख़ुश होकर चिल्ला पड़े, शायद मैं भी। मैं जल्दी से उठा और अपनी दुकान में गया। मैं मैच में इतना खो चुका था कि मुझे कुछ याद ही नहीं था। सब कारीगर दुकान में बैठे थे। मैं जल्दी से गया और जिस बोतल में पेट्रोल रखा था, उससे मुँह लगाकर मैं क़रीब आधा लीटर पेट्रोल पी गया।

मुझे उस समय इतनी प्यास लग रही थी कि मुझे सब कुछ पानी–सा नज़र आ रहा था। मैं पेट्रोल पीता चला गया। मुझे अचानक महसूस हुआ कि मैं कहीं पेट्रोल तो नहीं पी रहा। मैंने बोतल की तरफ़ देखा तो वो पेट्रोल ही था। मुझे उस समय इतना असर महसूस नहीं हुआ। रात के नौ बज चुके थे। मैंने देखा भारत मैच जीत गया। उसके बाद मैंने दुकान बंद की और ऊपर आ गया। मैं उस समय ठीक था। अचानक मुझे अपनी साँसों में पेट्रोल की महक–सी आने लगी। मैंने पानी पीया और घर में बताने लगा कि मैंने पानी समझकर पेट्रोल पी लिया।

पापा ने कहा, "ठीक तो है तू। तुझे तो कुछ भी नहीं हुआ"। मम्मी ने कहा, "मुँह–हाथ धो ले, मैं तेरे लिए खाना लाती हूँ"। मैंने सोचा कि खाना खाने से महक दब जाएगी। मम्मी खाना लेकर आईं और मैंने खाना खा लिया। खाना खाने के बाद मैं ऊपर सोने गया। मैं जब ऊपर ज़ीने में चढ़ रहा था तो पेट्रोल की डकार–सी आने लगी। रसोई में बहन दूध उबाल रही थी। मैं अचानक गैस से दूर हो गया। कहीं मुँह में आग न लग जाए! मैं पलंग पर लेट गया। रात के दस बज चुके थे। बहन दूध उबालकर कमरे में आई और मुझ से कहने लगी, "तुझे पेट्रोल की महक नहीं आ रही है?" मैंने बताया मेरे साथ ऐसे–ऐसे हो गया है। उसने मुझे कहा, "पानी पी ले, ठीक हो जाएगा"। बहन टीवी देखने नीचे चली गई। मुझे घुटन–सी महसूस होने लगी। मैं जल्दी से नीचे गया और कहने लगा, "मुझे डॉक्टर के पास ले चलो। मेरी तबीयत ख़राब हो रही है"। पापा–मम्मी जल्दी से मुझे हमारी गली के डॉक्टर अमित की दुकान पर ले गए। पीछे–पीछे राजू के पापा भी आ गए। मैंने कहा, "मैं शायद अब नहीं बचूँगा"। डॉक्टर ने पापा से पूछा, "क्या हुआ?" पापा ने कहा, "इसने पानी समझ कर पेट्रोल पी लिया"। उस डॉक्टर ने कहा, "यह पुलिस केस है। हो सकता है इसने इश्क़–विश्क़ के चक्कर में पेट्रोल पी लिया है"। सब कहने लगे, "ऐसा कुछ नहीं"। मेरी तबीयत ख़राब होती जा रही थी। काफ़ी देर के बाद डॉक्टर ने मुझे दवाई दी और कहने लगा, "अब भी बता दो। ये

पेट्रोल तुम ने लड़की के चक्कर में पिया है ना?" मैंने कहा, "नहीं–नहीं"। उसके बाद हम वहाँ से आ गए। मैंने आकर दवाई खाई और सो गया।

आज भी मैं जब पेट्रोल देखता हूँ तो मुझे वही समय याद आता है। देखता तो हूँ, मगर प्यार से।

ऐसा क्यों?

लख्मी चंद कोहली

'ऐसा क्यों' शब्द हमारी ज़िन्दगी में अकसर इस्तेमाल होता है। कभी हमें हमारी ग़लती का अहसास कराता है, तो कभी हमें ग़लत काम करने से रोकता है। कभी हमारी सोच को ग़लत ठहराता है, तो कभी हमें अपनी सोच पर सोचने के लिए मजबूर करता है। तो आइए मैं आपको अपनी एक ऐसी ग़लती के बारे में बताता हूँ। जिसे याद करके मुझे हँसी भी आती है, और कभी–कभी तो अपने ऊपर थोड़ा ग़ुस्सा भी आता है।

कुछ समय पहले की बात है। एक छोटी–सी दुकान में एक लड़का काम करता था। वो थी एसटीडी, आईएसडी, पीसीओ की दुकान, जो अभी नई–नई बनी थी। अभी वो पूरी तरह बनी भी नहीं थी। दुकान में अन्दर कैबिन तो था, मगर उस पर शीशा नहीं था। कैबिन में क्या, बाहर दुकान के दरवाज़े पर भी शीशा नहीं था। बस एक एसटीडी की मशीन थी और दो फ़ोन थे। और एक हँसता–हँसता छोटा–सा बच्चा, जो उस दुकान पर काम करता था, और काम करते–करते लोगों से किसी और काम के लिए बात करता था। वो बहुत चालाक था। मगर फिर भी वो धोखा कैसे खा गया? शायद उसे धोखा इसलिए मिला क्योंकि वह जल्दी ही किसी पर भी विश्वास कर लेता था। और उसे नौकरी की भी बहुत ज़रूरत थी, एक अच्छी नौकरी की।

अब आप सोच रहे होंगे कि आख़िर वो लड़का कौन है, और मैं उसके बारे में इतना क्यों जानता हूँ। वो लड़का मैं हूँ। इसलिए मैं उसके बारे में इतना जानता हूँ।

उसकी दुकान पर एक औरत अकसर फ़ोन करने आती थी। वो बताती थी कि वो राम

मनोहर अस्पताल में काम करती थी। मैं उससे अकसर अपने लिए काम की बात करता था। और वो कहती थी, "मैं तेरा काम ज़रूर लगवाऊँगी"।

अब शुरु होती है दास्तान मेरी बेवकूफ़ी की। उस औरत का नाम था रानी। वो दिखने में थोड़ी छोटी थी, उसका काला रंग था, मगर वो चालाक बहुत थी। मुझे आज भी याद हैं उसकी वो बातें। एक दिन वो आई और बोली–

रानीः सोनू, तू काम की बोल रहा था न! ला, मैं तेरे नाम का फ़ॉर्म भर देती हूँ। मगर पैसे लगेंगे।

यह सुनकर मैं थोड़ा परेशान तो हो गया था। दिल में यही था कि मुझे मेरा काम मिल जाएगा, पर दिल मेरा थोड़ा घबरा रहा था। मैं ये सोच रहा था कि कहीं ये मेरे पैसे लेकर भाग न जाये। फिर भी मैंने डरते–डरते बात की –

मैंने कहाः मैम, कितने पैसे लगेंगे?

तो – **रानीः** देख बेटा, ये सरकारी नौकरी है। इसमें तो बहुत पैसा लगता है। अब सोच ले कि तुझे ये नौकरी चाहिए कि नहीं। और हाँ, पैसा अभी तो सिर्फ़ पाँच सौ रुपए लगेंगे। फिर बाद में देखेंगे कि कितने में बात बनती है।

मैंने कहाः ठीक है मैम, मैं आप को कल पैसे दे दूँगा।

उस टाइम मैं काम करता था। इसलिए मैंने पाँच सौ रुपए मैम को दे दिए। मगर मैं रात भर यही सोचता रहा कि मेरा पैसा मुझे छोड़कर कहीं दूर न चला जाए। मैंने अपने घर में भी यह बात नहीं बताई थी क्योंकि मेरे पापा इस काम के लिए मुझे मना ही करते। वो कहते हैं कि पैसे लेकर कोई काम नहीं लगवाता, सब पैसे लेकर भाग जाते हैं। तब मेरे दिल में इस शब्द ने जगह बनाई, "ऐसा क्यों?" मैं सोचने लगा, "मैंने उस मैम को पैसे क्यों दिए? मैंने ऐसा क्यों किया?" इस शब्द ने मुझे अपने सोचे–समझे काम पर दोबारा सोचने पर मजबूर कर दिया। उसके बाद मेरी और मैम की मुलाक़ात सिर्फ़ दूर से ही होने लगी। मैं उनसे रोज़ पूछता, "मैम कब लगेगा मेरा काम?" तो वो बोलती, "अभी थोड़ा टाइम लगेगा"। फिर हमारी बात कुछ समय के लिए रुक गई। एक पूरा महीना गुज़र गया। फिर अचानक एक दिन मैम आई, और बोली–

रानीः सोनू, तू कल यहाँ से छुट्टी ले लेना।

मैंने कहाः क्यों मैम?

रानीः तुझे कल मेरे ऑफ़िस आना है। मैंने तेरी बात एक सर से की है। उन्होंने तुझे वहाँ बुलाया है।

मैंने कहाः मैम, उन सर का नाम क्या है?

रानीः उनका नाम दीपक है। वो बहुत अच्छे हैं। उन से सही तरह से बात करना, वो तेरा काम ज़रूर करवा देंगे।
मैंने कहाः ज़रूर मैम। मैं तो उनसे मिलना चाहता हूँ। मैम, मेरा काम आप ज़रूर लगवा देना।

मैं मन ही मन बहुत ख़ुश हुआ। मुझे लगा कि अब मुझे काम ज़रूर मिल जाएगा। मुझे लगा की अब मेरी मेहनत सफल होगी, और मैं अपने मन में कई तरह के सपने सजाने लगा। मगर मुझे क्या पता था कि कल मेरे साथ क्या होने वाला है।

मैं जब वहाँ पहुँचा, मुझे दीपक नाम का एक आदमी मिला। वो दिखने में साहब तो क्या, वो कहीं का चपरासी भी नहीं लग रहा था। मैंने सोचा था कि वो एक बड़ा आदमी होगा और गाड़ी में से उतरेगा। और उतरते ही मुझ से कहेगा, "सोनू, क्या हाल है?" मगर उस ने मुझ से ये नहीं कहा। वो आया और बोला –
दीपक सरः हाँ, तो ये है सोनू!
मैंने कहाः नमस्ते सर। मैम ने आपके बारे में बताया था।
दीपक सरः देखो भाई सोनू, काम तो तेरा हो जाएगा। मगर पैसे लगेंगे दस हज़ार।

दस हज़ार सुन कर तो मेरे कानों में एक बिजली–सी दौड़ गई और मैं वहीं खड़े–खड़े सोचता रहा कि मेरे साथ ही ऐसा क्यों होता है? क्यों हर कोई मेरे साथ पैसे की ही बात करता है? मगर मुझे तो नौकरी चाहिए थी, इसलिए मैंने बिना सोचे समझे कहा–
मैंने कहाः सर, दस हज़ार! सर, ये तो ज़्यादा हैं। सर, मैं एक ग़रीब लड़का हूँ। मैं इतने पैसे कहाँ से ला कर दूँगा सर?
मगर वो नहीं माना और कहने लगा –
दीपक सरः देखो यार, ये हमारे हाथ में नहीं है। हमें तो आगे भी देने पड़ते हैं। देखो भाई, इतने तो लगेंगे ही। अब तुम जानो, या तुम्हारी नौकरी। अगर तुम्हें नौकरी चाहिए तो पैसे तो देने ही पडेंगे।
ये सुनकर मैं वहाँ से चला आया। फिर मैम से बोलने लगा–
मैंने कहाः मैम, पैसे कुछ ज़्यादा नहीं है? मैम, कुछ कम नहीं हो सकते क्या?
रानीः नहीं बेटा, ऐसा नहीं हो सकता। इतने तो लगते ही हैं। लोग तो इस नौकरी के लिए लाख–लाख रुपए देते हैं। तू तो सिर्फ़ दस हज़ार दे रहा है।

मैंने कहा: ठीक है मैम, मैं कल ला कर दे दूँगा।

इतना कहकर मैं वहाँ से घर की तरफ़ को चल दिया और पूरे रास्ते मैं यही सोचता रहा, "मैं इतने पैसे लाऊँगा कहाँ से? अब तो घर में बताना ही पड़ेगा"। मगर फिर सोचता, "नहीं, मैं घर में नहीं बताऊँगा। मैं अपने ही पैसे दे दूँगा। शायद मेरा ये पैसा, जो कभी मेरी दादी ने मुझे दिया था, इसी काम के लिए था"।

बस फिर क्या था! देखते–देखते दूसरा दिन भी आ गया, और मैं सुबह जब अपनी दुकान पर पहुँचा तो मुझे दूर से मैम आती दिखाई दी। वो आई और बोली –
रानी: क्या हुआ बेटा? ले आया पैसे?
मैंने कहा: हाँ मैम, ले आया। मगर मैम, मेरा काम कब तक हो जाएगा?
रानी: बस दो दिन में तेरा काम हो गया समझ।
बस फिर क्या था! दो दिन बाद जब मैं अस्पताल पहुँचा तो दीपक सर मुझे अपने साथ लेकर गए, मेरा नाप वग़ैरह लिया और मुझसे कहा –
दीपक सर: ले भई सोनू, अब तेरा काम हो गया समझ।
ये सुन कर तो मेरा दिल बस हवा में उड़ने लगा और मैं हँसते–हँसते अपने घर की तरफ़ चल दिया। मैं उस दिन बहुत ख़ुश था। उन्होंने मुझे एक हफ्ते के बाद फिर बुलाया था, ये कहकर कि उस दिन मेरा काम हो जाएगा।

उस दिन मैं सुबह जल्दी उठा और नहा–धोकर तैयार हो गया। मेरे घरवालों ने मुझ से पूछा, "कहाँ चल दिया?" मगर मैंने उनसे कुछ नहीं कहा और बस अस्पताल की तरफ़ चल दिया। मैं सुबह नौ बजे ही अस्पताल पहुँच गया था। मुझ से रानी मैडम ने कहा था कि वो दस बजे आ जाएगी। मैं वहाँ पागलों की तरह उनका इन्तज़ार करता रहा, मगर वो नहीं आई। फिर मैं वहाँ गया जहाँ मेरा नाप लिया गया था। मगर आज वहाँ भी कोई नहीं था। मुझे वहाँ खड़े–खड़े चार घण्टे हो गए थे। मगर रानी मैडम का कुछ पता नहीं था। मैं कभी इधर जाता, तो कभी उधर। मेरा दिल मुझ से बार–बार यही कह रहा था, "गई, वो गई!"

फिर मैं थक–हार कर एक जगह पर बैठ गया। मेरे साथ में दो लड़के और बैठे थे, जो काफ़ी परेशान लग रहे थे और बार–बार कह रहे थे, "अब वो नहीं आएगी"। फिर

मैंने उनसे बात की–

मैंने कहाः क्या हुआ भाई? बड़े परेशान लग रहे हो, क्या बात है?

तो उनमें से एक, जो काफ़ी परेशान था, बोला –

लड़के ने कहाः कुछ नहीं यार। एक औरत मुझे धोखा दे कर चली गई। यार, उसने मुझे आज बुलवाया था, ये कह कर कि वो मेरा काम लगवा देगी। मगर वो मुझे फंसा कर चली गई।

ये सुनकर मैंने कहाः कहीं तुम ने उसे पैसे तो नहीं दिए थे?

लड़के ने कहाः हाँ यार, दिए थे।

मैंने कहाः कितने दिए थे? और उसका नाम क्या था?

लड़के ने कहाः भाई, पंद्रह हज़ार दिए थे, और उसका नाम रानी है।

यह सुनकर मैं हँसने लगा। मेरी हँसी सुनकर वो और दुःखी हो गया और बोला–

लड़के ने कहाः अबे यार मेरे पंद्रह हज़ार रुपए डूब गए, और तू हँस रहा है?

मैंने कहाः नहीं यार। मैं इसलिए नहीं हँस रहा, बल्कि मैं तो इसलिए हँस रहा हूँ कि मैं ही अकेला बेवकूफ़ नहीं। मेरे साथ तू भी बेवकूफ़ है, क्योंकि वो तुझ से ही नहीं, मुझ से भी पैसे लेकर भागी है। अब वो नहीं आएगी।

फिर हम एक दूसरे की बेवकूफ़ी की बातें पूछने लगे, मगर मैं उस से बात करते–करते यही सोच रहा था, "मेरे साथ ही ऐसा क्यों होता है! मुझे ही धोखा क्यों मिलता है?" हँसता, फिर दुःखी होता, मैं वहाँ से चला आया। मगर पूरे रास्ते मेरे दिमाग़ में यही रहा, "मैंने ऐसा क्यों किया? मैंने ऐसा क्यों किया?" उसके बाद वो रानी मैडम मुझे कभी नहीं मिली, और न ही दीपक सर का कोई पता चला। मैं जब कभी इस बात को याद करता हूँ तो मुझे कभी ग़ुस्सा आता है, तो कभी हँसी आती है। मगर एक सवाल हमेशा रहता है – "ऐसा क्यों किया मैंने? ऐसा क्यों किया मैंने?"

दिल की बात कैसे बताऊँ?

नीलोफ़र

बात उस टाइम की है जब मैं चौथी क्लास में पढ़ती थी। हम लोग मौजपुर में रहते थे। बी ब्लॉक के चौबिस नम्बर गली में। हम लोग दो साल तक यहाँ का घर किराये पर

देकर वहाँ किराये के मकान में रहे थे। क्योंकि उस टाइम पापा के दिमाग़ में था कि यहाँ का माहौल अच्छा नहीं है। और यहाँ और वहाँ के किराये में थोड़ा फ़र्क़ था, जिससे हमें फ़ायदा था। पर परेशानियों की भी कमी नहीं थी। अम्मी को राशन, तेल, चीनी यहीं से लेने आना पड़ता था, क्योंकि हमारा राशन कार्ड यहीं का बना हुआ था। इतना किराया और टाइम लगता था, और अम्मी थक भी जाती थीं। और हमारे सारे रिश्तेदार यहीं थे, तो हम लोग काफ़ी दिनों में उन से मिलने आते थे।

वहाँ पानी, बिजली की सप्लाई काफ़ी अच्छी थी। हमारा वो किराये का मकान सौ गज़ में था। आधे में घर, आधे में आँगन। आँगन में बरमा लगा हुआ था। साथ ही गुसलख़ाना और टॉयलेट था। ये उल्टे हाथ की साइड था। सीधे हाथ पर मेन दरवाज़ा। एक तो हमारे कमरे का दरवाज़ा, और दूसरा यह था। हमारे घर के बिलकुल साथ तीन मंज़िला मकान बना हुआ था, जहाँ बहुत सारे बिहारी रहते थे। और वो कढ़ाई का काम करते थे। उनमें से एक लड़का था राजा। वो थोड़ा–थोड़ा गोविन्दा से मिलता था। वो मुझसे बोलने लगा, मेरे साथ खेलने लगा। मैं भी उसके साथ खेलती थी। उसे ड्रॉइंग बहुत अच्छी आती थी। उसने मेरे घर की अंदर वाली दीवार पर मेरा नाम लिखा था। ऐसा लग रहा था कि पेंटर ने लिखा हो। मैं भी उसके कारख़ाने में जाती थी और अपने स्कूल सूपा का सामान, ड्रॉइंग या चार्ट उससे बनवाती थी। मैं उसे राजा भाई कहती थी। पूरे कारख़ाने में मैं सिर्फ़ राजा से ही बोलती थी और वो भी मुझसे बोलता था। और राजा पढ़ा–लिखा भी था, तो अपने स्कूल के काम में भी उसे शामिल करती थी। ख़ासकर मैथ्स में। मैंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि राजा मुझसे इतना क्यों घुलमिल कर रहता है।

वहीं दो–तीन घर छोड़कर एक लड़की रहती थी। उसका नाम सोनिया था। वो बहुत ख़ूबसूरत थी। रंग गोरा, लम्बी–चौड़ी। अब जब मैं उसे याद करती हूँ तो उसका चेहरा यश की बहन लक्ष्मी से मेल खाता हुआ लगता है। ख़ैर!

सोनिया, मैं और सोनिया की एक छोटी कज़न, जो मेरे साथ की थी, हम लोग रोज़ शाम को रस्सा कूदते थे। दो लोग चलाते थे, एक बीच में कूदता था। रात को जब कभी–कभार पूरी गली की लाइट चली जाती थी, हम तीनों और गली के और बच्चे मिलकर आँख मिचौली खेलते थे।

एक दिन राजा ने मुझ से कहा, "नीलोफ़र, मैं सोनिया से प्यार करता हूँ। मैं उसे अपने दिल की बात कैसे बताऊँ? देख, तू ही एक ज़रिया है मेरे दिल की बात उस तक पहुँचाने का। देख, तू मेरी छोटी बहन जैसी है। अगर तू मेरी मदद नहीं करेगी, तो कौन करेगा?" उस टाइम मुझे भी जोश चढ़ गया फ़िल्म की तरह दो प्रेमियों को मिलवाने का। उस टाइम मेरे दिमाग़ में वो सब एक्टर, एक्ट्रेस आ रहे थे जिन्होंने दो प्यार करने वालों को मिलवाया और अपनी इमेज बनाई। मैं उन्हीं तस्वीरों में अपने आप को देखने लगी। उसी दिन राजा ने मुझ से एक पैंसिल और पेज लिया और मेरे घर के आँगन में ही बैठकर लिखने लगा। अम्मी ने पूछा, "राजा क्या लिख रहा है?" तो मैंने भी बड़े जोश में आकर झूठ बोला। कहा, "वो अपने घरवालों को ख़त लिख रहा है"। उस टाइम मेरे पास सोनिया के बाले थे जो मैंने उससे दो दिन के लिए लिये थे। मैंने सोचा क्यों न ख़त को भी बालियों के साथ ही दे दूँ। मैं उन बालियों के साथ राजा के ख़त को लेकर उसके घर पर गई। तब दोपहर के दो या ढाई बज रहे थे। मैंने खिड़की में उसे आवाज़ दे कर बुलाया क्योंकि दरवाज़ा बंद था। क्योंकि दोपहर को सब सोते थे। मैंने उससे कहा, "ये ले सोनिया, तेरी बालियाँ"। उसकी मम्मी देख रही थीं। वो आईं और उन्होंने ख़त मेरे हाथ से छीनकर अपनी साड़ी के ब्लाउज़ में जल्दी से रख लिया। मेरा और सोनिया का हाथ पकड़ लिया। मुझे बुरी तरह से कमरे में धकेला और अपने छोटे बेटे से कहा, "अपने पापा को उठा ज़रा"। मुझ से कहने लगीं, "तुम दोनों को इस कमरे में बंद करके आग लगाती हूँ"। वो मेरा हाथ पकड़े रहीं। उस वक़्त मैं बहुत डर गई। पर सोनिया की मम्मी की बड़बड़ चालू थी।

"तुम दोनों को माँ–बाप की इज़्ज़त की कोई परवाह नहीं। अरे ऐसी बेटियों को आग लगा देनी चाहिए जो माँ–बाप का नाम उछालें। आज तो तुम दोनों को जला दूँगी"। सोनिया के पापा आए, मुझे चुप कराने लगे और प्यार से पूछने लगे, "बेटा, किसने दिया वो ख़त?" मैं उस समय बहुत डर गई थी। रोने में आवाज़ भी नहीं निकल रही थी। मैं अम्मी के पास जाना चाहती थी, पर वो लोग मुझे छोड़ ही नहीं रहे थे। मैंने झट से सोनिया के पापा से कहा, "ये ख़त राजा भाई ने दिया"। वो बोले, "कौन राजा?" मैंने कहा, "वो कारख़ाने में काम करता है"। वो मेरा हाथ पकड़कर गली में आए। कहने लगे, "बता मुझे, कौन है राजा?" उनके चिल्लाने से गली में काफ़ी भीड़ इकट्ठा हो गई। सब लोग निकल आए, औरतें अपने–अपने घरों के दरवाज़ों पर खड़ी थीं। सोनिया के पापा मेरा हाथ पकड़े हुए थे। मैं रो रही थी। सब लोग मुझे ही देख रहे थे। सोनिया तो अपने घर में रो रही थी।

वो मुझे कारख़ाने में लेकर गए और एक–एक आदमी के सामने ले जाकर पूछते, "ये है राजा?" उस वक्त मुझे लग रहा था इस मंज़र से ज़्यादा तो मौत अच्छी होगी। काश मुझे इस टाइम मौत आ जाए। कारख़ाने में राजा नहीं था। फिर वो मेरा हाथ पकड़े–पकड़े ज़ीने से उतरने लगे। भीड़ और बढ़ती जा रही थी। इतना सब कुछ हो गया और अम्मी को पता नहीं था, क्योंकि वो तो सो रही थीं। फिर मेरे और सोनिया के पापा के पीछे भीड़ भी उतरने लगी। इतने में राजा गली में आता हुआ दिखाई दिया। मैं एक दम चिल्लाई, "ये है राजा!" सब लोग उसके पीछे भागे। भीड़ को देखकर वो भी पलटकर भागने की कोशिश कर रहा था, पर लोगों ने उसे पकड़ लिया। सोनिया के पापा ने भी उसे दो–तीन थप्पड़ रसीद किए। जब उन्होंने मेरा हाथ छोड़ा तो मैं भागकर रोती हुई अंदर आई और अम्मी को उठाया। अम्मी हड़बड़ा कर उठीं, तो मैंने बाहर का इशारा किया। अम्मी बाहर गईं तो देखा भीड़ राजा को पीट रही थी और सोनिया के पापा उसका कॉलर पकड़कर ले जा रहे थे। वो कह रहे थे, "चल पुलिस स्टेशन। तेरे प्यार का भूत मैं उतारूँगा"। लोग अम्मी से कहने लगे, "अपनी बेटी को संभाल लो। काफ़ी लड़कों में रहने लगी है। इसे देखकर हमारी लड़कियाँ भी बिगड़ जाएँगीं"। जबकि उस वक्त मुझे यह समझ नहीं आ रहा था कि मैंने किया क्या है? अम्मी ने मुझे ख़ूब डाँटा, और पीटा भी।

मैं काफ़ी दिनों तक चुपचाप रही। बस स्कूल से घर, घर से स्कूल। स्कूल से आने के बाद घर से बाहर क़दम नहीं निकालती थी। राजा से बात तो क्या, अब तो मैं उसके कारख़ाने की तरफ़ देखती भी नहीं थी। ये महीना पूरा होते ही मकान मालिक का संदेशा आया कि अगले महीने तक मकान खाली कर देना, हमारा भाई आ रहा है जिसका मकान है। ये तो मकान मालिक ने पहले भी कई बार कहा था। पर अब की बार जब कहलवाया तो अम्मी ने कहा, "देख, अब तो कोई नहीं चाहता हम यहाँ रहें"। अम्मी बड़बड़ाने लगीं। पापा ने मकान मालिक से जाकर बात की कि एनुअल इग्ज़ाम होने दो, फिर मकान खाली कर देंगे। उसके बाद से अगर घरवालों में भी राजा की बात होती तो मैं चुप हो जाती थी। फिर इग्ज़ाम के बाद हम वो घर छोड़कर वापस यहीं आ गये।

जब मैं अपने पिछले दिनों को याद करती हूँ, तब ये हादसा मुझे याद आता है। तो मैं सोचती हूँ कि काश दोबारा से वही समय आ जाए और मैं ऐसा न करूँ। अब भी मैं

यही चाहती हूँ। मैं ज़िन्दगी का रीवाइंड बटन दबाकर उसे बदलना चाहती हूँ। उस वक़्त जैसा मुझे महसूस हो रहा था, मैं समझ नहीं पा रही उसे किन शब्दों में आप लोगों को बताऊँ।

मेरी दुश्मन – मेरी सोच

शमशेर अली

मैं स्कूल छोड़ने की सोच चुका हूँ। रात कैसे कटी, ये मैं ही जानता हूँ। सुबह हुई, आँखें खुलीं, बिस्तर से उठा। मुँह धोया ही है। अम्मी हर सुबह की तरह सवाल करने लगीं, "स्कूल जाएगा या नहीं? क्या करना चाहता है? कुछ बताता क्यों नहीं? पढ़ना चाहता है या नहीं? तेरे पापा रोज़ाना पूछते हैं कि क्या करेगा तू"। गर्मा–गर्मी बातों का जवाब है या नहीं, दे पाऊँगा या नहीं, ये सोचते–सोचते मेरे अंदर बिजली की लहर दौड़ जाती है। जिससे सारे शरीर का ख़ून उबल पड़ता है। अचानक सब कुछ ग़ायब, फिर से मैं उस भूल–भुलैया में भटकने लगता हूँ। और एक रास्ता देखने की कोशिश करता हूँ। मगर कोई फ़ायदा नहीं। अपनी मंज़िल पर न पहुँच पाने का एक अफ़सोस लिए मैं कारख़ाने पहुँचता हूँ। वहाँ चुपचाप बैठा रहता हूँ, कुछ देर तक अपना अफ़सोसनामा लेकर। थोड़ी ही देर में हमारी बातचीत शुरु हो जाती है। नौ, साढ़े नौ बजे तक चलती है। मैं उस एक पल से बचा रहता हूँ जहाँ मेरे दुश्मन हैं। मेरी अपनी सोच मुझे दुश्मन लगती है।

अपने समुद्र को नापते–मापते मैं बाहर आता हूँ। और अपनी कशमकश को छोड़, बस्तियों की गलियों को पकड़, उनकी तस्वीरें और आवाज़ें देखते–सुनते घर पहुँचता हूँ। घर का माहौल इस वक़्त थोड़ा शांत रहता है। पापा काम पर जा चुके होते हैं। बड़ा भाई भी। तीनों बहन–भाई स्कूल जा चुके होते हैं। घर में अम्मी, छोटा भाई और मैं। तैयार हुआ, कुछ सोचते हुए घर से बाहर निकला। घर के इस माहौल में एक अजीब–सी हिचकिचाहट है।

इसी के साथ दोबारा गलियों में निकलता हुआ कब सेन्टर आया, मालूम ही नहीं पड़ा। और अपना कोना ढूँढ़कर वहीं बैठ गया दोबारा से।